श्रेयसी

राजपाल 'जयेश'

श्रेयसी

राजपाल 'जयेश'

दो शब्द

श्री राजपाल शास्त्री की आन्तरिक सृष्टि का परिचय उनका यह संकलन है। उनकी महती कामना इस संकलन के "जीवन दो" कविता में मुखरित हुई है। जो लोग भारतीय साहित्यकार संघ के निष्ठित एवम् समर्पित कार्यकर्ता के रूप में उन्हें जानते हैं, उनके लिए यह हर्ष का प्रसंग है कि अब वे उनके कृतिकार से भी परिचित होंगे। श्री शास्त्री का कवि समाज से दूर आत्मकेन्द्रित-वाग्जाल का उपासक नहीं अपितु कर्तव्य और भावना के संगम पर खड़ा कर्मवीर है। उन में आत्म विज्ञप्ति के प्रति उपेक्षा का भाव है इसी लिए संकलन को सामने लाने में इतनी देरी हुई है। हमें आशा है कि वे साहित्य साधना के पथ पर निरंतर अग्रसर होंगे।

मोहनलाल श्रीवास्तव

कवि और काव्य

श्री राजपाल शास्त्री के इस काव्य-संकलन में उनकी समय-समय पर लिखी गई २६ कविताएँ संग्रहीत हैं। इन रचनाओं में भाषा, भाव, छन्द और विधा के अनेक प्रयोग दृष्टिगत होते हैं। यदि कुछ रचनाएँ मुक्त-वृत्त में लिखी गई हैं तो कुछ में पुरानी कवित्त और सवैया पद्धति को अपनाया गया है। कुछ कृतियाँ छायावाद युगीन गीतात्मक शैली का स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती हैं, तो कुछ में आज के परिवर्तन-जन्य वातावरण की झलक भी दृष्टिगत होती है।

इस संकलन की अधिकांश रचनाओं की मूल भाव-भूमि देश, समाज और राष्ट्र को नवनिर्माण का सन्देश देकर एक आदर्श और उदात्त वातावरण प्रस्तुत करना है। ऐसी रचनाओं में 'जीवन दो' 'इन्सान नया है जागा' 'जन्मभूमि शत-शत प्रणाम' 'तुम हुए शहीद' 'जागो हे रघुवीर' 'जागी भारत की तरुणाई' 'नन्हें मुन्ने वीर सिपाही' 'असहाया' तथा 'जवान-किसान आदि उल्लेखनीय हैं।

युग की सामाजिक विभीषिकाओं के प्रति भी इस संकलन का कवि उदासीन नहीं है। उसने बड़ो ही निर्ममता से समाज में फैली हुई विषमता और आज की परिस्थितियों की विवशता के प्रति जो कुछ व्यंग्य किया है, वह उसकी जागरूकता और सहृदयता का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत करता है। यदि ऐसा न होता तो उसके कवि की लेखनी से 'खानदानी हूँ' जैसी व्यंग्यमयी रचना प्रसूत न होती। ऐसी ही भावनाएँ उनकी अन्य रचनाओं में भी रूपायित लगती हैं। तब ही तो उन्हों ने अपनी 'अयिमां ! वरदे' नामक पहली रचना में यह लिखा है।

राग-द्वेष का दम्भ-दर्प दल
भस्म करो मां मिथ्या छल-बल
पूत प्रेम की सुर सरिता के
नव निनाद की गूँजे कलकल
ज्ञानमयो अन्तर रागिनि में
नव सरगम भर दे।
अयि मां! वर दे।

उनकी 'केसरी गोदी धरा की' शीर्षक रचना कवि के मन का प्रशस्त और उदात्त सांस्कृतिकता की द्योतक है। 'अर्थवाद का युग' शीर्षक रचना में कवि ने आज के भौतिकवाद की बुराइयों को इंगित करके धन के पीछे भागती हुई जनता को सावधान करते हुए यह घोषणा की है :—

अर्थवाद की मृग-तृष्णा में
भटक रही मानव की आँखें
दुर्मदान्ध, ज्ञानान्ध मनुज की
उरझ रही हैं मन की पाँखें।

कवि धन की मृग-तृष्णा के पीछे भागते हुए मानवों के लिए उनका सही मार्ग द्रष्टा बनकर इस रचना में सामने आया है। यदि ऐसा न होता तो वह यह क्यों लिखता :—

अर्थवाद पर श्रमा भयावह
जहां प्रभा का नाम नहीं है
बुद्धिवाद के स्वार्थवाद में
आत्मवाद का काम नहीं है

सारांशतः इस संकलन की सभी रचनाएँ समाज में उदात्त भावनाओं का प्रसार करने के पावन उद्देश्य को सामने रखकर ही लिखी गई हैं। कवि देश को एक सांस्कृतिक सन्देश देना चाहता है. जो आकर सर्वथा उन की इन रचनाओं में अनुस्यूत हुआ है। उनकी यह भावना इन पंक्तियों में और भी व्यापकता से मुखरित हुई है :—

द्वेष-दम्भ का जाल जला दो
वर - वैदिक - पथ पुनः दिखा दो
सुखद वरद सौहार्द सिखा दो
जग हो स्वर्ग समान ।

इस संसार को स्वर्ग बनाने की उन की अदम्य आकांक्षा है। कहीं कहीं उनका कवि कल्पना और अनुभूति की तरल त्रिवेणी में अवगाहन करता-सा लगता है, लेकिन उसकी वह भावना भी अपनी पीड़ा के माध्यम से जग की पीड़ा को दूर करने में ही लगी हुई दिखती है। उसकी मान्यता के अनुसार :—

साधना की आँच में दिन रात जो तपता रहा है
आँसुओं की जलन में, दिन रात जो जलता रहा है
ध्वनि उसी की विश्व में सुरसरिमयी हो
विमलता को रूप का नव अंग देती।

अपनी पीड़ा के वर्णन के माध्यम से भी वे विश्व के अन्धकार को दूर करने की पावन भावना रखते हैं। यदि ऐसा न होता तो उनका कवि यह क्यों लिखता :—

दर्द का मेरा पपीहा, प्रेम घन को नित पुकारे
रोज व्याकुल छटपटाता, मेघ ना पनघट सँवारे

मैं स्वयं ही पीर पीकर, पीर दिल की कुछ बुझा लूँ
दीप जीवन का जला कर, विश्व से मैं तम उठा लूँ

देव नागरी लिपि और राष्ट्र भाषा हिन्दी के लिए कवि के मन में जो प्रशस्य और भव्य-भाव हैं, वे भी उनकी काव्य साधना के उत्कर्ष के द्योतक हैं। देवनागरी लिपि में लिखी गई हिन्दी की उपादेयता और ग्राह्यता का प्रतिपादन करके रोमन लिपि और अंग्रेज़ी भाषा की हेयता उसने इस प्रकार प्रतिपादित की है :—

बी यू टी बट और कहीं पर पी यू टी पुट बनता
कहीं पड़ा पो गुमसुम बैठा कहीं पै टी छुट रहता
कहीं व्यर्थ के चक्कर डाले, कहीं पड़े हैं ताले
समझ न आता चालाकों के क्या कुछ खेलें चालें
अन्तर बाह्य-रूप से सम हम, कथनी करनी इक-सी
स्पष्ट भाव है, स्पष्ट रूप हैं, स्पष्ट लेखनी इसकी
देव नागरी भाषा से ही हो सकता उत्थान,
और न कोई अनुपम भाषा. मन में सोच सुजान।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस संकलन का कवि अपने देश, अपने वेश, अपनी भाषा अपनी संस्कृति और अपने धर्म के उत्थान तथा उत्कर्ष के प्रति अत्यन्त जागरूक है। आज के इस स्वच्छन्दतावादी युग में उनकी यह निष्ठा सराहनीय और अभिनन्दनीय है। मैं उनके उत्तरोत्तर उत्कर्ष का आकाँक्षी हूँ।

गुरुवार
३ मार्गशीर्ष, सं० २०२८ वि०　　　　क्षेमचन्द "सुमन"

अयि माँ! वर दे

अयि माँ ! वरदे
शुभ्र ज्योति मति उदित सदा हो
मन मराल माँ मुदित सदा हो
नव्य चेतना नव्य भावना
जन मानस को ज्योति प्रदा हो
नव विधान से नव विहान कर

चेतन मन करदे
अयि माँ वर दे।

राग द्वेष का दम्भ दर्प दल
भस्म करो माँ मिथ्या छलबल
पूत प्रेम की सुर सरिता के
नव निनाद की गूंजे कलकल
ज्ञान मयी अन्तर रागिनि में

नव सरगम भर दे
अयि माँ वर दे।

मेघ-पथिक से

हे अम्बर में उड़ने वाले! अपना भी कुछ परिचय देना।

तुम सागर के अंश रूप हो
नीर कलश छवि मनहर बांकी
कालिदास के मेघदूत हो
या हंसों की सुन्दर झांकी
कहो कौन सी दूं परिभाषा, इसका भी कुछ निश्चय देना
अपना भी कुछ परिचय देना।

शरत् शान्ति के अग्रदूत हो
मधु पावस पंछी की पांखें
बन्ध मुक्त स्वछंद छंद के
गायक की या तिरती आंखें
उन आंखों के गहन नीर का, कुछ तो मुझको परिचय देना
अपना भी तो परिचय देना।

विरही की पीड़ा श्वासों की
बनी हुई साकार मूर्ति हो
करुण कल्पना के अभाव की
तुम कोई रे लक्ष्यपूर्ति हो
सिन्धु बिन्दु के परिपोषक तुम, अपना भी कुछ निर्णय देना
अपना भी कुछ परिचय देना।

मन पंछी तू उड़ता जा

नील गगन में दूर क्षितिज तक
पथ सागर को तिरता जा
जग निन्दा के तूफानों पर
पंख तीर से फिर छा जा
मन पंछी तू उड़ता जा

साहस की गति को कब तक रे
बांध सकी है जग की कारा
रोके नहीं रुकी है साथी
प्रवहमान सरिता की धारा
सूना तम हो फिर भी साथी
दीप प्रगति के जड़ता जा।

मेघ-पथिक से

हे अम्बर में उड़ने वाले! अपना भी कुछ परिचय देना।

तुम सागर के अंश रूप हो
नीर कलश छवि मनहर बांकी
कालिदास के मेघदूत हो
या हंसों की सुन्दर झांकी
कहो कौन सी दूं परिभाषा, इसका भी कुछ निश्चय देना
अपना भी कुछ परिचय देना।

शरत् शान्ति के अग्रदूत हो
मधु पावस पंछी की पांखें
बन्ध मुक्त स्वछंद छंद के
गायक की या तिरती आंखें
उन आंखों के गहन नीर का, कुछ तो मुझको परिचय देना
अपना भी तो परिचय देना।

विरही की पीड़ा श्वासों की
बनी हुई साकार मूर्ति हो
करुण कल्पना के अभाव की
तुम कोई रे लक्ष्यपूर्ति हो
सिन्धु बिन्दु के परिपोषक तुम, अपना भी कुछ निर्णय देना
अपना भी कुछ परिचय देना।

मन पंछी तू उड़ता जा

नील गगन में दूर क्षितिज तक
पथ सागर को तिरता जा
जग निन्दा के तूफानों पर
पंख तीर से फिर छा जा
मन पंछी तू उड़ता जा

साहस की गति को कब तक रे
बांध सकी है जग की कारा
रोके नहीं रुकी है साथी
प्रवहमान सरिता की धारा
सूना तम हो फिर भी साथी
दीप प्रगति के जड़ता जा।

४

गीत कोई गुनगुना लूं

गीत कोई गुनगुना लूं
दीप जीवन का जलाकर, विश्व से मैं तम उठा लूं ।

दर्द का मेरा पपीहा
प्रेम घन को नित पुकारे
रोज व्याकुल छटपटाता
मेघ न पनघट संवारे
मैं स्वयं ही पीर पीकर पीर दिल की कुछ बुझा लूं
दीप जीवन का जलाकर, विश्व से मैं तम उठा लूं ।

सहज सुख की चांदनी को
पी गया है केतु कोई
दूर तक अब इस क्षितिज में
बंध न पाया सेतु कोई
क्यों न मन के दीप में ही लक्ष्य जीवन का सजा लूं
दीप जीवन का जलाकर, विश्व से मैं तम उठा लूं ।

साधक से

कल्पना के पंख पर नित
भर रहा मन-खग उड़ानें
नियति के विस्तृत वियत् पर
बढ़ रहा वह पंख ताने
कल्पना के मूक चित्रों को क्रिया ही रंग देती
साधना ही कल्पना की मूर्ति को कुछ ढंग देती।

  

साधना की आंच में
दिन रात जो तपता रहा है
आसुओं की जलन में
दिन रात जो जलता रहा है
ध्वनि उसी की विश्व में सुरसरिमयी हो
विमलता को रूप का नव अंग देती।

एक सुबह

एक सुबह
जिसने जन्म दिया सूरज को
चमकाया पूरब को
अंधियारा निगल लिया
धरती पर छा गई
सोने सी सुखद किरण
बहने लगी चतुर्दिक् शीतल मदभरी वायु

कलियां जो बन्द थीं
उर में समेटे हुए
अपनी सुगन्ध को
उनको भी खिलने का
उठ कर मचलने का
अवसर कुछ हाथ लगा
अंतर की सुरमयी
झंकृत सी होने लगी
प्यार भरी किरणों से सभी को सहारा मिला

सिमटी मुस्कानों में
बहारों सा उजाला किया
जगती के आंगन को
रस का संसार दिया
अपना विश्वास दिया
बुझे हुए चेहरे पर
हास की हरियाली से
रंग नव उमंग भरा रास का विकास किया

किन्तु हाय विधाता की
रेख कौन टाल सका
सहसा ही अम्बर में
काला घन उठ आया
और धरती से व्योम तक काला भय लहराया

पर,
सूरज के तेज से
अनुपम ओज से
घन घटा छितराई
फूट चली अमराई
सूरज नवआभामय
तेजोमय, महिमामय
पूज्य हुआ विश्व में
उसके प्रबुद्ध भावलोक में
सोम की शीतलता
शान्ति की पावनता
क्रान्ति की चंचलता
अजेय की सुधीरता
देख विश्व भर में विस्तारी दानवता लगी बांधने मनसूबे

जिससे
मान आन ज्ञान सब
भूत के अंधेरे में
एकदम डूब जाएं
इसी हेतु चढ़ आए
राहू केतु दलबल
ताशकन्द भूमि पर
ज्योति मन्द कर दिया
भाग्य बन्द कर दिया
भारत की प्रतिभा को
चार बड़े लोगों के कंधों पर फेंक दिया

सूरज का भावलोक
उसका प्रतिबिम्ब सोम
उसके प्रभाव का
पावन पुनीत व्योम
डूब गया
शोक के अन्तरलोक में
अन्धकार छा गया
दिव्य अवतार गया
कालिमा बिखर गई
नीलिमा सिहर गई, लालिमा जाने कहां कब किधर गई ।

पश्चिम भी रो उठा
पूरब भी रो उठा
प्रकृति परी की आंचल का
रंग भरा छोर उठा ।

जीवन दो

जाति को जीवन दो भगवान्,
मोह निशा को दूर भगा दो,
ज्ञान-सूर्य को फिर चमका दो,
सत्य-स्नेह की सुधा बहा दो,
जागे देश महान् ॥

द्वेष-दम्भ का जाल जलादो,
वर-वैदिक-पथ पुनः दिखादो,
सुखद वरद सौहार्द सिखादो,
जग हो स्वर्ग समान ॥

वैर, विरोध, विवाद विनाशो,
शान्ति, सौख्य सत्कर्म प्रकाशो,
विनय, विवेक, विज्ञान, विकासो,
उपजे उर अभिमान ॥

पाप-शाप त्रय ताप भगादो,
सद्गुण साहस सरि उमगादो,
सरस सुमंगल-सुमन खिलादो,
महके जग-उद्यान ॥

इन्सान नया है जागा

दिल दुख गया किसी का हँसता यहां है कोई।
सुख सो गया किसी का सोता है सुख से कोई ।।

कोई तड़प रहा है, दुःखों से दब रहा है।
गा-गा के गीत सुख के खुशियां मनाता कोई ।।

कोई मना दिवाली दौलत से खेलता है।
गा-गा के गीत ग़म के रोता यहां है कोई ।।

रोटी से हो रहा है खिलवाड़ घर किसी के।
इक टूक रोटी को भी तरसा रहा है कोई ।।

कुत्ते भी नाज़ जिनके कर दूध से रहे हैं।
इक घूंट दूध पाने मचला रहा है कोई ।।

कर्मों का भाग कहकर गुमराह कोई करता।
दुखिया का खून पीकर फलता यहां है कोई ।।

बस हो गया बहुत अब जुल्मो-सितम ऐ ज़ालिम।
इन्सां नया है जागा, गा दे तू गीत कोई ।।

तारे हैं

यामिनी-सुभामिनी के ओढन के हेतु नव्य-
ओढनी के ऊपर ये सिलम सितारे हैं।

किंवा क्रूर दानवों के दल के दलन हेतु,
देश-वीर-बाल क्रोध-नैन विसतारे हैं।

कैधों सुरलोक-मध्य सुरगण-अट्टहास,
करन से भासें शुभ्र दन्त के कतारे है।

वीर बलिदानियों की आरती उतारन को,
जल रहे दीप या कि दिव्य-द्युति तारे हैं।

१२

बोध

लाखों घटनाएं देखते हैं नित जीवन में,
लेकिन न दिल पै असर कुछ करतीं ।

लाखों यमराज के सदन जाते नित-प्रति,
लाखों तज आते वन्धुओं की चिता जरती ।

लाखों रोते मोह में, असार संसार कहते,
क्षण में विसार सार बुधि न विचरती ।

लेकिन विशेष जन लख लव-लेश-क्लेश,
भव-भोग छोड़ परमेश में विचरतीं ।

जन्म भूमि शत शत प्रणाम

जननी जन्म भूमि हम तुमको शत शत करें प्रणाम।

अंक तुम्हारी है अमृतमय
पीते अमृत होकर निर्भय
बढ़ते पथ पर हम निःसंशय
पा आशीष महान ।

तव छाया पीयूष-वर्षिणी
तव माया है विविध रूपिणी
शक्ति शान्ति आनन्दवर्धिनी
दे भक्ति निष्काम ।

केसरी गोदी धरा की

संस्कृति के मान बिन्दु चिर सुरक्षित थे जहां पर,
दिव्य-आभा युक्त, तेजोमय सुधि बसते जहां पर।
सृष्टि की अनुभूतियों का आदि जन्म-स्थल जहां पर,
सृष्टि-क्रम की गूढ़ चर्चा की हुई रचना जहां पर।
वेद-मन्त्रों से जहां की चोटियां भी गूंज उठती,
ऋषि-जनों के अमर वाक्यों को धरा यह चूम उठती।
धर्म-चर्चा से जहां का बन गया कण-कण सुपावन,
मनुजता के दिव्य-रस का पान कर बनते महाजन।
चिर-सखा मेरा हिमालय खून के आंसू बहाता,
शान्त प्रहरी जो कभी था दास बनकर वह सिसकता।
शत्रु के निर्मम-करों से हो चुका है अग्नि-वर्षण,
युग-सुरक्षित मान्यताओं का हुआ है मान-मर्दन।
शुभ्र-संस्कृति की पयस्विनी जो रही विश्वम्भरा की,
रक्त-रंजित हो गई अब, केसरी गोदी धरा की॥

खून का पंजा अभी तक शत्रु का सिर पर गड़ा है,
सर्व-भक्षण के लिए वह लाल विषधर अब खड़ा है।
दृष्टि उसकी पूर्ववत् ही देव कानन पर गड़ी है,
कुटिल जिह्वा सर्प के सम लपलपाती फिर बढ़ी है।
परम पावन धाम शंकर का हड़पना चाहता है,

देव-धरणी मन्दिरों को वह सटकना चाहता है।
सस्य-श्यामल क्षेत्र को वह लाल रँगना चाहता है,
वह सुधा के स्रोत को विषमय बनाना चाहता है।
चाहता जगनीक, कल्हण, पाणिनी की पुण्य भू को,
चाहता वह भारती-आराधकों की पितृ-भू को।
प्राण-प्यारी मातृ भू का चाहता सर्वस्व हरना,
चाहता आर्यत्व का अस्तित्व ही सारा निगलना।
रे सचेतक, नयन खोलो, लाज रख लो वसु धरा की,
रक्त रंजित हो न पाए, केसरी गोदी धरा की।

तुम हुए शहीद*

तुम हुए शहीद इस वतन के वास्ते ।
तुम हुए शहीद इस चमन के वास्ते ।।
शहीद यों स्वतन्त्र-श्वास में वतन पले ।
स्वतन्त्रता-समीर में सदा चमन फले ।।
तुम हुए शहीद सुख-ग्रमन के वास्ते ।।
सींच यों गए चमन को रक्त दान से ।
खिल उठें सहस्र पुष्प स्वाभिमान से ।।
सिखा गए मरण स्वयं, तरन के वास्ते ।।
ग्राग देश-प्रेम की जला गए प्रचण्ड ।
लौ में जिसकी कर सकेंगे देश को ग्रखण्ड ।।
ज्योति रूप बन गए चमन के वास्ते ।।
रोम रोम यज्ञ में तो कर दिया हवन ।
देश दे सका नहीं मगर तुम्हें नमन ।।
ग्रनाम भी मरे तो इस वतन के वास्ते ।।
तुम्हारी ग्रर्चना में काव्य-भाव-पुष्प भेंट हैं ।
त्याग विश्व में ग्रपूर्व सर्वश्रेष्ठ है ।।
मर के भी हुए ग्रमर वतन के वास्ते ।।
देह-दीप की बनी हुई परम्परा ।
सशक्त कर्म से रहेगी नित्य उर्वरा ।।
प्रेरणा दो त्याग की वतन के वास्ते ।।

* यह कविता ग्रमृतसर की एक कवि-गोष्ठी (सन् १६५०) में पढ़ी गई ।

हिन्दी

देव नागरी भाषा से ही हो सकता उत्थान,
और न कोई अनुपम भाषा मन में सोच सुजान।

हो न सके समकक्ष कभी इसके अंगरेजी भाषा,
कभी न कोई टिक सकने की कर सकती है आशा।
यहां वर्ण सब नियम बद्ध हो बंधे एकता डोर,
व्यर्थ न कोई शब्द युग्म है, व्यर्थ न तोड़ मरोर।
जैसा रूप वही उच्चारण, कहीं न व्यर्थ लिखावट,
व्यर्थ न कोई अनुशंसा है, और न व्यर्थ दिखावट।

जैसा वर्णन वैसा दर्शन, एकरूपता रही बखान।

बी यू टी बट और कहीं पर पी यू टी पुट बनता,
कहीं पड़ा पी गुमसुम बैठा कहीं पै टी छुट रहता।
कहीं व्यर्थ के चक्कर डाले, कहीं पड़े हैं ताले,
समझ न आता चालाकों के क्या कुछ खेलें चालें।
अन्तर-बाह्य-रूप से सम हम कथनी करनी इकसी,
स्पष्ट भाव हैं, स्पष्ट रूप है, स्पष्ट लेखनी इसकी।

हम से सत्य सुवक्ता से ही होगा जन कल्याण॥

जन-साधारण भारत-भू का इसे समझ है सकता,
अन्तर्निहित मनोभावों का विश्लेषण कर सकता।
अन्तर प्रान्तर की दुविधा को ये ही सुविधा देती,
इसके माध्यम से ही जनता उलझन सुलझा लेती।
ऐक्य-भाव सब भाषाओं में इसके द्वारा होगा,
इससे सभी समस्याओं का अब निपटारा होगा।

होगा तभी कि जब जन-मानस लहर उठे अभिमान॥

कूट नीति के चक्रव्यूह को प्रथम समझना होगा,
अभिमन्यू बन चक्रव्यूह से स्वयं निपटना होगा।
कृष्णार्जुन तो कूट नीति से दूर हो गए हमसे,
धर्मराज तो धर्म-चक्र के व्यूह छिप गए चुप से।
कौरव दल की रौरव लीला आती है मुंह बाती,
हिन्दी-द्रुपदा लाज-चीर में सिमट सिमट रह जाती।
भीम बली बन दुःशासन का दलना गर्व-गुमान ॥

उर्दू, अरबी, तुर्की, इंगलिश जर्मन क्या जापानी,
फ्रेंच, फारसी, चीनी, रूसी चाहे हो ख्रिस्तानी।
सभी विदेशी भाषाओं का मूल-स्रोत है संस्कृत,
उसी देव वाणी को करने हाय हमीं से अपहृत।
लक्ष्य-भ्रष्ट हो सुत ही मां के करते हैं अपमान,
फिर परकीयों से माता का कैसे रक्षित मान।
क्षुद्र-बुद्धि की क्षुद्र-नीति तज, करें सफल अभियान ॥

अपमानित होती है हिन्दी, हम सहते अपमान,
दुर्बल और दुरंगी चालों से भारत म्रियमाण।
सबल सुनीति अरु दृढ़ सम्बल निश्चय ही हम धारें,
सद् विवेक की चलनी में निज-पर का भेद नितारें।
स्वाभिमान का पी लें अमृत, करें पुनर उत्थान ॥

हिन्दी, हिन्दू, हिन्दूस्तान विश्वजयी होवे यह गान,
इसी हेतु सब जिए मरें, बन जाएं पूज्य महान्।
एक सूत्रता का स्वर गूंजे, अजय पराक्रम जागे,
मृत्यु, भीति, नैराश्य अनय का भूत हृदय से भागे।
ज्ञानवन्त, उद्योगी, कर्मठ, न्याय-नीति के ज्ञाता,
गहें मुकुट मां हिन्दी के हो, विजयी हिन्दी माता।
फूले, फले राष्ट्र भारती, जगे राष्ट्र सम्मान ॥

जागो हे रघुवीर

जागो हे रघुवीर, तीर अब सम्भालो।

फैल रही पैशाची माया,
निशिचर निबिड अनय है छाया,
घृणा, द्वेष, दल-दम्भ सजग, लख,
सरल हृदय जन जन भरमाया।

दूर करो भव-पीर॥

भरत-व्योम के दीप्तिमान तुम,
तरुणाई के चण्ड दिवाकर,
प्रखर वीरता की किरणों से,
लुप्त-प्राय हों छली निशाचर,

गहन निशा दो चीर॥

माया-ममता के दृढ़ बन्धन,
तोड़ गिराश्रो, पथ के बाधक,
लक्ष्य-प्राप्ति में ढील न देना,
मातृभूमि के प्रिय आराधक,

ढाहो गढ़ प्राचीर॥

सावन घन

सावन के घन आओ, अमृत घन बरसाओ ।
सूखी धरती तड़प रही है, प्यासी धरती तरस रही है ।
सूरज की चमकीली किरणें, अग्नि-रश्मि बन बरस रही हैं ।।
प्राण छटपटा रहे जगत के, तुम जीवन बन छाओ ।
खड़ा कृषक ले प्यासी आंखें, सिकुड़ रहीं आशा की पांखें ।
चातक बनकर तुझे पुकारें, गीली कर दो सूखी आंखें ।
छमछम अपना गीत सुनाओ, तुम पायल बन आओ ।।
तड़प रहा पीड़ित मन-चातक, रूठ गया उसका आह्लादक ।
पीड़ा के बन गए फफोले, उन्हें सहलाओ बन सावक ।
शीतल-अमृत गागर भर, धनवंतरी छवि बन आओ ।।
विरही मन का विरह-संदेशा, लेने आवो अग्रदूत बन ।
कालिदास के युग की झांकी, दिखे पुनः साकार कान्ति बन ।
नीरस-मन-उपवन सरसाने, अमी-कलश छलकाओ ।।

दिशा बदलती जा रही

आज जीवन की दिशा प्रति क्षण बदलती जा रही,
आस्थाएं सब अधर में अब लटकती जा रही,

धर्म को पंगुल बनाकर फेंक कोने में दिया,
आदर्श के सिद्धान्त को अब ताक पै बिठला दिया।
मान्यताओं को नई थ्यूरी निगलती जा रही।

त्याग का वह यज्ञ पावन अब बना उपहास है,
भोग अरु सम्भोग का अब बन रहा जग दास है,
कर्म-कुण्डलि अंगुली से अब निकलती जा रही।

कर्म-काण्डी पंडितों का हो रहा खण्डन यहां,
धूर्त लम्पट दडितों का हो रहा मण्डन यहां,
कर्म और अकर्म की मर्याद मिटती जा रही।

तत्व-चिन्तन की दिशा में ह्रास दिन दिन हो रहा,
स्वार्थ गुम्फन की दिशा में वास दिन दिन हो रहा,
अर्थ-चिन्ता आत्म-चिन्तन को सटकती जा रही।

आज हर इन्सान इन्सां को मिटाने पर जुटा,
वह सभी इन्सानियत बैठा लुटेरों से लुटा,
दूरियां इन्सानियत की ओर बढ़ती जा रहीं।

जागी भारत की तरुणाई

जागी भारत की तरुणाई,
प्राची में विहंसी अरुणाई ।

सदियों से जो सुप्त पड़ी थी,
ओढ़े कायरता-अवगुण्ठन ।
रक्त-बिन्दु में हुआ स्फुरण है,
दूर हुआ अब आत्म-प्रवचन ।

फैली आत्मज्ञान की भाषा,
कण-कण ने अब ली अंगड़ाई ।

स्वाभिमान की फूटी किरणें,
अन्तर्मन तम ध्वस्त हुआ है ।
गतानुगति की मिथ्या ममता
भ्रम, अज्ञान निरस्त हुआ है ।

आत्म-स्वत्व के संरक्षण की,
यौवन ने कसमें दुहराईं ।

निज भाषा-संस्कृति हित मन में,
बीज प्यार के हुए अंकुरित ।
नीर-पवन पाकर स्वदेश का,
प्रीत-पौध अब हुआ प्रफुल्लित ।

भाव-बोध के सुमन खिल उठे,
मनश्चेतना पुनः जगाई ।

नन्हे मुन्ने वीर सिपाही

नन्हे मुन्ने वीर सिपाही हिन्द देश के,
नन्हे मुन्ने पथ के राही हिन्द देश के।

चाहे बीहड़ वन-पर्वत हों, चाहे होवे दुर्गम घाटी।
राहें टेढ़ी पथरीली हों, चाहे हों कांटों से पाटी।
ज़रा नहीं घबराने वाले, जरा नहीं भय खाने वाले।

बढ़ते जाते वीर सिपाही हिन्द देश के।

चाहे होवे रात अंधेरी, चाहे वन-पशुओं ने घेरी।
चाहे साथ हमारे बढ़नेवालों ने हों आंखें फेरी।
हिम्मत वाले हम मतवाले, भारत माता के रखवाले।

नहीं रुकेंगे वीर सिपाही, हिन्द देश के।

हम गौरव से रहने वाले, हम सौरभ से उड़ने वाले।
औरों का हक नहीं छीनते, अपने हक पै डटने वाले।
स्वयं जिएंगे जीने देंगे, नारा यही बुलन्द करेंगे।

इसके हम पाबन्द सिपाही, हिन्द देश के।

नन्हें मुन्ने

छोटे छोटे नन्हें मुन्ने, हम भारत के भाग्य विधाता।
सब की आंखें टिकीं हमीं पर, हम भारत के नव-निर्माता।

नन्हें नन्हें, छोटे छोटे, हम माता के नैन-सितारे।
हम हैं नन्हें वीर सिपाही, भारत माता के रखवारे।

हम आशा की नई फसल हैं, हम हैं खेतों की हरियाली।
हमें देख घबराने लगती, विपदाओं की आंधी काली।

हम में सूरज की लाली है, पूर्णचन्द्र की शीतल छाया।
पर्वत जैसी ऊंची बातें, धरती जैसा धीरज पाया।

सागर-सा गम्भीर हृदय है, आसमान-सी चौड़ी छाती।
छोटी-छोटी बातें लेकर रार यहां कब होने पाती।

दिल में सदा सितारों जैसी, नव-आशाएं झिलमिल करतीं।
खिले बहारों के फूलों-सी, मधुर-मधुर मुस्कानें भरतीं।

एक पिता के पुत्र सभी हैं, एक हमारी भारत माता।
सुख-दुख में हम साथ रहेंगे, यही प्यार का सच्चा नाता।

असहाया

रे पथिक पत्थर हृदय क्या, क्यों न लखते अश्रुधारा,
दीन-हीन, विहीन गृह हो, जग बना है आज कारा।

आज ममता-हीन मानव, दास दौलत का बना है,
क्रूर-कर्मी, भीम-कर्मी, दानवों सा वह बना है।

क्या तुम्हारे घर नहीं हैं, सुत-सुता का प्रेम पावन ?
क्या नहीं अर्धाङ्गिनी के चारु-चितवन-तीर चालन ?

और क्या निःस्वार्थ मां का, प्रेम परिमार्जित भुलाया।
यातनाएं झेल जिसने, पालने में था झुलाया।

सोच तो कुछ थाम उर को, हृदय में दुखड़ा लिए थे,
थी अमित आश्रय किसी का, प्यार का मुखड़ा लिए थे।

देह में दिल है तुम्हारे, और दिल में दर्द होता,
मर्द क्या जो देखकर दुःख और का नहिं सर्द होता।

देख जग की दुर्दशा दिल पत्थरों का रो उठेगा,
कमल कोमल भावनामय दिल न क्यों हा! खो उठेगा ?

है असल में आपको स्वयमेव भूला जानता तू,
शक्ति तव दुर्जेय मानव, क्या नहीं पहचानता तू।

उठ दया के स्रोत ! अपने आप को पहचान ले अब,
दीन-हीन निराश्रितों की आह पर तो कान दे अब।

भेद निज-पर के हृदय से प्रिय! भगादे आज से ही,
इन अभागों के दिलों में, प्यार भर दे आज से ही।

प्रेम-गंगा की अमर धारा बहादे विश्व भर में,
नाव जीवन की हमारी, पार उतरे जलधि-ज्वर में।

गीत

आज दीपक जल रहे हैं ।

स्नेह-सिंचित दीप बाती जल रही है आज तिल-तिल ।
नित जला तन सकल अपना, दे रहा प्रतिदान पल-पल ।

तम अमा का दूर कर वे जगत उज्ज्वल कर रहे हैं ॥

ढक लिया पति-चन्द्र से मुख रे नवोढा यामिनी ने ।
दूर घूंघट कर दिया सौंदर्य से मुख कामिनी ने ।

नव प्रणय की रात्री में सजनी सजन हिल-मिल रहे हैं ॥

कर रहे है आज इंगित चारु चितवन से परस्पर ।
मद-भरी आंखें मचलती मदभरे मन से परस्पर ।

प्रेम-लीला देख मानस-हंस चंचल हो रहे हैं ॥

खानदानी हूं !

एक खानदानी हूं ।
बहुत ऊंचा खानदानी ।
क्योंकि—
मैंने देखा है कितने ही खानदानों के
लिबासों, लहज़ों को, अदाओं को
देखे हैं रंग ढंग,
कितनी ही बातों की
उड़ती हुई चंग के पेचे लगाने में ।
इसी खानदान के ही
सदा ध्यान रखता हूं—
मान का सम्मान का ।
इसी खानदानी से ही
धनी हूं मैं मानी हूं
एक खानदानी हूं ।
बात हर इक से—
चाहे वह बच्चा हो, बूढ़ा हो, जवान हो,
चाहे वह नर और नारी का प्रमाण हो,
करता हूं खोलकर
खिड़की मैं दिल की ।
पर न समक्ष—
प्राय: याद है परोक्ष ही ।
क्योंकि,
इससे न सुलगती,
नहीं धधकती,
नहीं चमकती,
दिल की हरी वल्लरी में आग ।

न इससे कदाचित्—
सकता कोई खेल
विविध रंग रंगी गालियों से फाग।
देखी भाली हैं मैंने जीवन की गलियां
इसी से तो फूंककर, चलता हूं डगर पर
धोखा नहीं खाता हूं,
रखता हूं चौकसी,
इसी के सहारे से तो,
सफलता की सेना से पाता सलामी हूं
एक खानदानी हूं।
मैं नारद का वंशज हूं,
अपनी हृत्तन्त्री की टकोर कर तारों को
सरगम सुरीली मैं मुख से सुनाता हूं
पहुंच कर हृदय में जो
ढूंढ आवास लेती,
ऐसी मधुरिम मैं वीणा की वाणी हूं
एक खानदानी हूं।
मैं
टूटे हुए दिलों को मिलाता हूं आपस में
अन्तर की रील से
लेकर के प्रेम डोर
मुख की सुई में डाल
फटे पुराने दिल के चीथड़ों को
जोड़कर
करता हूं नवीकरण मैं कमाल।
पर
ढंग मेरा सब से निराला,
शायद कभी न होगा देखा भाला।
एक को बुलाया फूंका मंत्र कान में।
अपने ही लहजे में, अपनी ही मस्ती में

अपनी ही शान में।
बस, ढंग है एक ही
सुलह का सफाई का।
क्या ! सुनो !
तुम हो मर्द
बन कर के औरत क्यों ?
करते हो काम क्यों निरन्तर घर का,
तुम रखो हाथ में अपने
सारा जो है हिसाब घर का।
ज़रा अकड़ से, रोब से—
रहा करो,
हीजड़े नहीं हो,
आखिर मर्द हो, मर्दों की हो औलाद।
ऐसी ही प्रेम की कहता कहानी हूं,
देखो, खानदानी हूं।
सुलह के सफाई के समय
तुम बुला लिया करो मुझ को,
साफ साफ सारी बात,
रख दिया करूंगा मेज़ पर
बवण्डर जो उनके दिल के गगन पर—
उठ रहा है ज़ोर शोर से
मेरी वाणी की ओला वृष्टि
उठ रही जो धूल सारी
बैठ जाएगी वह पल भर में
वसुन्धरा के वक्ष पर।
मैं
इस तरह से हर किसी को
देता शान्ति की निशानी हूं।
बड़ा खानदानी हूं।

इस तरह से—
चाटुकारी की चाशनी बनाकर
चिपकानी चाही थीं मक्खी की पांखें
पर, रखती थी मक्खी भी आंखें
वे आंखें—
जो पारदर्शी थीं
जो देख सकती थीं दिल के दर्पण में
प्रतिफलित हुई सब बात
जो नासमझी से
कभी भी किसी पर कर सकती थी आघात।
चोट डालनी चाही तप्त लौह पर
पर इस चिन्तन में
कुछ ठण्डक आ गई लौह पर
चोट लगाई,
पर लौह में न आई नरमाई,
घन टूट गया,
पड़ा रहा लौह भी वैसा ही
देख यह दुरंगी भंगी चाल
ठिठका रहा खड़ा मैं भी वैसा ही
पर, झट से
अपने को लिया संभाल
क्यों कि
बूढ़ा होने पर भी मैं
भावों की उठती हुई जवानी हूं।
सच्चा खानदानी हूं।
सुलह सफाई का ताल-मेल करता हूं।
फिर जिस किसी से मिल के
करना पड़े मुझे कुछ भी
उसे मिलने में मैं
कभी न हिचकिचाता हूं।

पहुंच जाता हूं पल में
जैसे पंखों के बल पै पंछी—
पहुंचता है निज दाने पर।
कुछ इधर की, कुछ उधर की—
बातों से बांध भूमिका,
शुरु करने की मैं, सोचता कहानी हूं।
ऐसा खानदानी हूं।
देता हूं उगल मैं दिल की भड़ास सब
निन्दा की निराई में बीज सब बोता हूं
कहता हूं,
पर व्याज स्तुति का सहारा लेकर
अकल के अन्धे न समझ पाएं कुछ भी
साथ ही दोहराता हूं—
चाहिए न करनी निन्दा।
ये पाप है, घोर महा पाप है,
शापों का अभिशाप है।
मैं तो आया हूं पास केवल आपके
सलाह मशवरे का इक,
पैगाम कुछ उठाके।
परामर्श के मिस
सब कह डालने का आदी हूं
करता मुनादी हूं
नाम ले सलाह का—
अपनी ही छेड़ता राम कहानी हूं।
दूसरों की कुछ सुनने का
मुझे न सुहाता शौक।
अन्तर में दूसरे के छिपे हुए कौन भाव
इसको भी सोचने का उठता न तनिक चाव।
आखिर खानदानी वह कैसा खानदानी है?
जिसे,

दूसरों के दुःख, दर्द, यातना
सुनने का पल-पल रह-रह उठता है दिल में
सागर की लहरों का उफान।
उसे क्या पता ?
किसको कहते हैं खानदान।
वह तो निरा निपट मूर्ख है,
रोता मैं उसकी बेबस नादानी हूं।
मैं खानदानी हूं।
मुझे
बहुत ही पसन्द हैं चाटुकार,
चाटुकारी से सजादें जो मेरा घर-बार
पर चाहे बातों में खाते सौगन्ध हों
करते छल-छन्द हों
बोलने में स्वच्छन्द हों
फिर भी मैं
आत्म-सम्मान का अमृत तज कर
आत्म-ग्लानि का विष पीकर
मानता उनकी सदा रसीली वाणी हूं।
ऊंचा खानदानी हूं।
मैं
समझता हूं बुरा खर्चना पत्नी या बहू का धन,
क्योंकि
ऐसा करने में हामी नहीं भरता है मन।
मैं कह सकता हूं
पत्नियों को, जो हैं मित्रों की
मुझे चाहिए धन।
पास नकद न होने पर
ज़ोर दे सकता हूं स्वाभिमान से—
लगाओ न हवा उसको
जो

सड रहा है डाकखानों के खजानों में
पड़ा हुआ तुम्हारा धन।
जिस पर डाकखाने के काले नाग
फैलाए बैठे अपना फन।
फिर यह चाहे किसी को अखरे,
सुनता नहीं हूं किसी के नखरे,
कह देता दिल की रवानी हूं।
असली खानदानी हूं।
मैं कह सकता हूं और सदा कहता हूं
दूसरों को भला भी बुरा भी।
क्योंकि मुझे अधिकार है,
मेरी अपनी सरकार है।
अपना ही लोकतन्त्र है
हम भी तो स्वतन्त्र हैं।
दूसरों के
दोष और अवगुण प्रकटाने में।
जब कि लोग
पीटते हैं ढिंढोरा रात दिन
पटु हैं मीन मेख हरदम निकालने में
अपने ही चोटी के
नेताओं के या उपनेताओं के।
तो हमें भी
हक है कहने का दूसरों को
जो कुछ हमारे दिल में आ जाए।
पर,
यदि कोई दूसरा देने लगे थोड़ा भी
सलाह या मशवरा।
तो
झट मैं खोल कर सामने हूं रखता
अपनी पुरानी महाभारत के पन्ने।

अवकाश ही कभी न देता,
जिस से कि खोल वह भी
सके दिखला निज हृदय के पन्ने ।
देता हूं
दूसरों के सामने हमेशा ही
नसीहत का उपदेश
वेदों से, उपनिषदो से,
गुरुओं से, साधुओं से
पण्डितों से, पुजारियों से—
सुन-सुन, चुन-चुन—
एकत्रित किया है मैंने
सुन्दर सलोना सा जैसा भी सन्देश ।
उसी पर चलने का
फूंक-फूंक कर पग रखने का
बार-बार मैं सभी को करता हूं आग्रह
जिस से कि
पथ के विघ्न विधाता सारे
दूर-दूर टल जाएं सारे ही अष्टग्रह ।
ऐसी जो पुरानी हैं परम्पराएं सारी ही
उन्हें
जिन्दा रखने की मिसाल मैं पुरानी हूं
मैं खानदानी हूं ।
जिह्वा नहीं,
द्विजिह्वा है ये
वैसे तो मानो यह धारती मौन है ।
लेकिन कभी भी कोई
जाने अनजाने कभी
मुझे कुछ कहने का करता दुस्साहस है;
फण को फैला के झट
उस पै सवार होती

जान ले के भागता उठा के निज धोती को
कहता हूं औरों को
अगर कोई गाली बके
लग जाए मुख पै, और यदि वस्त्र पर,
साबुन का घोल ले के मुख से हटा लो उसे,
और लगाओ उसे कपड़े के दाग पर,
सब धुल जाएगा
उजला हो जाएगा।
चन्दा-सा चमकने लगेगा वह पल में।
तुम न किसी को कुछ
कहना कभी भूल से
मैं ही काफी हूं स्वयं
किसी की इज़्ज़त मिलाने को धूल में
इस तरह से दूर मैं करता परेशानी हूं।
मैं खानदानी हूं।
मेरी रसना में—
रस है,
बड़ी ही सरस है।
अमृत-सी घोलता जब किसी के कानों में
अपनी ही उमंगों की तरंगों की पींगों में
लगता भुलाने निज अंग प्रत्यंगों को
लगता है ऐसे,
मानों घूंट दो घूंट उसने
अपने ही गले से उतार ली चरस है।
कहता है जब कोई पांचवां वेद भी
जो है गालियों का सम्भवत: प्रभेद ही,
बनकर झट मौनी,
धर कर नई योनी,
एक से अनेक उसे करने हूं लगता।
जैसे कि मदारी कोई

लेकर के अपने हाथ में रुपया एक
उसको अनेकों ही रुपयों में बदलता ।
पर मैं तो
देता हूं दान नित औरों को
ऐसा उपकारी हूं, ऐसा मैं दानी हूं ।
मैं खानदानी हूं ।
अब भी
समझ यदि खूबियां न पाए मेरी
कौन-सा प्रमाण तुम्हें और देना पड़ेगा,
जिस से
तुम्हारा भी पाकर प्रमाण-पत्र
अपनी विशिष्टता में चार चांद जोड़ लूं ।
कौन सा प्रमाण ?
तुम्हें और करूं पेश मैं
जब कि समक्ष तेरे, खड़ा प्रत्यक्ष हूं ।
अब तो मैं—
अपने में बन गया कहानी एक
जो कि
बहती रहेगी सदा मानस के स्रोत में
रुकने का उसे क्या काम,
रुकने का न लेती नाम
आराम का नाम लेना वहां पै हराम है ।
बहती रहेगी जो
बढ़ती रहेगी वो
ऐसी मैं अमन्द नदी-नीर की रवानी हूं
मैं खानदानी हूं ।

जवान-किसान

जवानी मुबारक तुम्हें हो जवान,
किसानी मुबारक तुम्हें हो किसान।
तुम खून से सींचते हो धरा,
पसीने से करते हो तुम उर्वरा,
मोती नयन के दो उजले समान।
सीमा पै तुम हो सजग सावधान,
उगाते हो धरती पै तुम अन्न-धान,
निभाते यों कर्त्तव्य दोनों महान।
तुम्हीं स्वेद से सींचते खेतियां,
सुरक्षित तुम्हीं से बहू-बेटियां,
चौकस चतुर काल प्रहरी समान।
ये देश जब तक न होगा अखण्ड,
मिलकर करेंगे परिश्रम प्रचण्ड,
भुवन में भरेंगे यों महिमा महान।

अर्थवाद का युग

कहते शास्त्र सभी चिल्लाकर,
सबके भीतर है परमेश्वर।
पर हमने तो देखा भाला,
अन्तर में बसता अर्थासुर।

मानवता के पंख कट चुके,
दानवता ने पंख पसारे।
हृदय शून्य है मरु-परती सा,
बुद्धि सर्प-सी कुण्डलि मारे।

सत्य-न्याय की पाद-पीठि पर,
धनोन्मत्त अधिकार जमाए।
सद्-विवेक के उच्च मंच पर,
बलोन्मत्त उत्पात मचाए।

वित्त चित्त को आज कर रहा,
ज्ञान-चेतना शून्य निरन्तर।
अब यथार्थ के यथातथ्य से,
हुए सत्य-पथ हेय निरन्तर।

कपट-कर्म ही धर्म गीत है,
अधम-कर्म ही पूज्य श्रेय है।
निन्द्य-वस्तु ही वन्दनीय है,
त्याज्य-भोज्य ही बने पेय हैं।

अर्थवाद का युग प्रधान यह,
अर्थहीन असमर्थ मनुज है।
अर्थवाद के इस विवाद में,
पाते विजय-विभूति दनुज हैं।

अर्थवाद की मृग-तृष्णा में,
भटक रहीं मानव की आंखें।
दुर्मदान्ध, ज्ञानान्ध मनुज की,
उरझ रहीं हैं मन की पाँखें।

अर्थतत्व पुरुषत्व स्वत्व का,
आज बना एकान्वयार्थ ही।
आत्म-तत्व, अध्यात्मवाद की,
सब बातें हो गई व्यर्थ ही।

अर्थवाद का सर्प वासुकि,
हृदय अंश को आज डस चुका।
हृदय-हीन निर्जीव देह को,
आज स्वयं पाषाण ग्रस चुका।

धन-कुबेर की मन बाँबी में,
वसु-विषधर कुण्डलि मारे है।
जहां मनुजता के पग पड़ते,
वहां वहां विषधर मारे है।

धन-कुबेर ही पुण्य भाक है,
धनवन्तों की मान-प्रतिष्ठा।
निर्धन पर तो कुल के जन ही,
करते नित कटाक्ष की विष्ठा।

धन ही जीवन मान बिन्दु है,
धन ही कर्म-काण्ड का केतू।
धन ही लौकिक इष्टि सिन्धु है,
धन ही लोक तरण का सेतू।

अर्थवाद, पर अमा भयावह,
जहां प्रभा का नाम नहीं है।
बुद्धि वाद के स्वार्थवाद में,
आत्मवाद का काम नहीं है।

अर्थवाद में आत्म तृप्ति ही,
आज मनुज का चरम ध्येय है।
स्वार्थ-तृषा की तृप्ति मुख्य है,
लोक-कर्म सब तुच्छ, हेय हैं।

श्री प्रसाद (राजेन्द्र)

हे प्रसाद !

तव महाकाल अभियान श्रवण कर
स्तम्भित हुए गगन औ' भूधर
चेतन और अचेतन ऊपर
बीता अमित विषाद ।
सुन
स्तब्ध निश्चल हो गया
भूतल अतल में खो गया
मन-वीण के सब तार टूटे
मन्द सस्वर सब निनाद ।

तू था प्रसाद

मात पिता के पुण्य-कर्म से
भक्ति-भाव की तपश्चर्य से
प्रभु-प्रणव के वरद हस्त ने
किया भेंट था मान-भाव से
भक्त जनों की पुण्य-गोद में
तू प्रसाद-सा ही प्रसाद ।

तू था प्रसाद

गान्धी के आशीर्वाद की
निष्कलंक प्रतिमा सजीव
तप त्याग भक्ति असिधारा सम
दृढ़ व्रत धारा कठिन कठिनतम
लक्ष्य एक ही
पन्थ एक ही
आदेश एक ही

सन्देश एक ही
उसको पाना
उस पर बढ़ना
उसका पालन करना प्रण से
उसे अमर वाक्य गीता-सम जाना ।
नहीं भूलकर किया कभी भी
जीवन में कुछ तुच्छ बहाना ।
तुम जीवट थे
तुम कर्मठ थे
फिर क्यों मन में उठ सकते थे
छोटे वाद-विवाद ।

हे प्रसाद !
तुम अमर विभूति
भारतीय संस्कृति से पाई
तुमने सुखद अनुभूति,
चिर सत्य शान्ति की ज्योति ।
जहां लगाए पद्मासन में
शाश्वत युग से होती ज्योति
चिर अमर सत्य की ज्योति
तुमने इस ज्योति का पाया
निज जीवन में पुण्य प्रसाद ।

पर,
मूक व्यक्ति के
रसास्वाद सम
वह केवल अन्तर अनुभूति ।
कैसे रसना
अन्तर्वसना
जो चर्मावृत

प्रकट कर सके
अशरीरी का रसास्वाद ।
ऐसा ही तूने
पाया था प्रसाद ।

तुम थे प्रसाद
बापू के शिष्य अनूठे,
आदर्श नहीं अपनाए झूठे
सत्य मार्ग से कभी न रूठे
रहे अचल, अविकल,
निश्चल, अविचल,
जैसे खड़ा पुरातन प्रहरी
युग युगान्त से
उत्तर दिशि में
दिवा निशि में
देवतात्मा सखा हिमाचल ।
त्यों
तुम भी उनके
संग साथ थे
संपद् में भी
आपद् में भी
आंधी में, तूफानों में भी
तट पर भी, मंझधारों में भी ।
गोली की तेज बौछारों में भी
हटे न पीछे
कभी न खीझे ।
सत्य-पंथ को रक्त दान से
सदा रहे तुम सींचे।
धन्य तुम्हारा त्याग
देश-हेतु असीम अनुराग

धन्य धन्य अनुरक्ति
बापू में दृढ़तम भक्ति
अप्रमेय तव निष्ठा
तव उपमा-हीन प्रतिष्ठा
प्रतिभा का है प्रसाद ।

हे प्रसाद !
तुम रजोगुणी भी होके
रहते थे मन को रोके ।
तुम सतोगुणी थे
ज्ञानी थे, ध्यानी थे ।
तुम थे भोगी
पर थे संयत रहते
मन से और वचन से
कर्म से और अमल से
जैसे कि कोई योगी
बैठा हो ध्यानावस्थित
प्रभु के भजन, मनन में ।
ये जो कुछ
था चमत्कार
उससे ही तो
परिलक्षित था होता
मिला तुम्हें भी
अतुल अमोलक
प्रभु का प्रेम प्रसाद ।

हे प्रसाद !
वह नहीं भूमि है,
तपोभूमि है
जिसकी कठिन तपश्चर्या से

उपजे तेजस्वी
ऋषि, तपस्वी
ज्ञानी, वर्चस्वी
राजा जनक विदेह ।
देह धार कर
रहे विश्व-सर
किन्तु
लिप्त हुए न माया
रहे निर्बाध
इस अगाध भव-सागर में
जैसे
जल में कमल तैरता
नहीं डूबता
लिप्त न होता वह जल-माया ।
त्यों प्रसाद
तुम भी सदेह बन
रहे विदेह समान-धाम में
ये निर्मोह छोह का संगम
देखा तुम में
सकल विश्व ने
कर विस्फारित
चर्म-चक्षु को ।
थी वह अद्भुत
तपोनिष्ठ की
तपः साध
बस तपः साध ।

हे प्रसाद !
वह धरा निरी न
वसुन्धरा है,

वसुभूमि है
विहारभूमि है
जो महा तपस्वी बुद्ध देव ने
आ चूमी है ।
जिसे बुद्ध ने प्रथम चुना था
आलोक प्रकाशन हेतु
वह यह पावन पुण्य-भूमि है ।
उस वसुधा की पुण्य गोद से
उपजे अनुपम
सजीव पुण्यधन
अगणित हीरे
ज्ञान-गंभीरे ।
तुम भी उनके हो प्रतीक
यह बात नहीं जग में अलीक ।
तुमने तमसावृत भारत को
प्रमृष्ट हो रहे सत्यामृत को
पाशविक दानवों के चंगुल से
मुक्ति प्राप्ति-हित
किया घोर संघर्ष अविरत ।
झेले कष्ट सहर्ष
न लाए हृदय अमर्ष ।
अमा मिटा कर
पुनः हमें स्वातन्त्र्य सूर्य की
आन दिखाई
लिए अरुणाई
स्वर्णिम रश्मि प्रभात ।

तुमने प्रसाद
भारतीय सब दिव्यादर्श
लिए उतार सभी जीवन में

उनकी परम्पराएं
अनुभूत मान्यताएं
संरक्षण हेतु तुम ही
कृत-संकल्प हुए थे ।
प्रताप-व्रती की भांति
रहे जूझते प्रतिक्षण ।
विपदा पै विपदा झेली
थे प्राण सदा हथेली
मानो
तुम खेल रहे हो
बच्चों-सी ये अठखेली ।
तुम बढ़े चले,
तुम रुके नहीं
तुम गए टूट
पर झुके नहीं ।
नित रहे तोड़ते काली कारा ।
बढ़ते रहे, बढ़ते रहे
लड़ते रहे, बढ़ते रहे
ज्यों पावन निर्मल गंगा-धारा ।
स्तुत्य भगीरथ
स्तुत्य तुम्हारा यत्न भगीरथ
वह धन्य धरा
वे मात-पिता भी
जिन्हें मिला तुम-सा प्रसाद ।
जिसने प्रसाद पा अमृत-सा
मातृ-मन्दिर की सज्जा में
ममता-मयी मातृ अर्चा में
किया सहर्ष बलिदान
वह धन्य !
जननी-जाया प्रसाद ।

तुम थे प्रसाद
स्वाभिमान के दीप्तिमान
प्रचण्ड ज्योति के भास्वान ।
माँ भारती-हित
संस्कृति-हित
जीवमान, प्राणों के प्राण ।
भारती माँ सम्मान हेतु
दे दिया धन
और तन-मन
आत्म-त्याग का होम करके
कर दिया सर्वस्व अर्पण ।
उच्च-पद आसीन माँ हो
स्वाभिमान, सम्मानपूर्वक
सिंहासनारूढ़ माँ हो ।
शासन उसी का
एक छत्र
हो यहां, अपरत्र भी
वर्धमान सदैव होवे
स्वाभिमान प्रसून विकसे
विश्व में आमोद छावे ।
यह कल्पना का
चित्र तेरा
स्वप्न हो स्वर्णिम सवेरा ।
है तभी सार्थक,
कह रही चर्चित चिता से—
उठ रही पवमान पावक ।
दुःख में, नैराश्य में भी
तड़पता न छोड़ दें हम
द्वार पर आए जो याचक ।
तभी श्रद्धांजली पूरी

मनों की कामना पूरी
अधूरी साध हो पूरी
सकेगा पहुंच तब ही तो
किया जो
आज जगभर ने
उन्हीं के मान में
सम्मान में
जो भाव पूरित श्राद्ध ।

आशा दीप जलाना रे !

आशा दीप जलाना रे !

जीवन में पथरीली राहें, रोकेंगी फैलाकर बाहें,
पथ से पतित तुम्हें करने को, चमकेंगी चमकीली चाहें,
ऐसी विषम परिस्थिति में भी, पथ से भटक न जाना रे।
चरण पंथ पर जो बढ़ जाते, एक नया इतिहास बनाते,
बाधाओं के गिरि-शिखरों पर, चिन्ह सदा वे ही मुसकाते,
जग-जीवन के हिय पटलों पर, गीत नया लिख जाना रे।
आलस-नाग हृदय में तेरे, साहस सद्बुद्धि को घेरे,
असद् ज्ञान, अविवेक कर्म की, कुण्डली मार लगाए डेरे,
नाग नाथने के हित श्रम की, निशिदिन बीन बजाना रे।
नूतन पथ है, शून्य दिशाएं, फिर भी बढ़ना तुमको राही,
जगवालों के सहने पड़ते, तिस पर तीव्र कटाक्ष सदा ही,
पर उनको अनदेखे राही, मंज़िल पर बढ़ जाना रे।
मंज़िल अपनी पाना रे, आशा दीप जलाना रे।

सखी री सावन घन छायो

प्रेम की बुंदवा छमछम बरसत
जियरा पीय मिलन को तरसत

उमड्यो घन घहरायो
सखी री सावन घन छायो।

कारे बदरा दौरे आए
बिजुरी चमकै तन तड़पाए

चैन नहीं मन पायो
सखी री सावन घन छायो।

चुम्बन करत अवनि को अम्बर
सरस स्निग्ध लोचन बिम्बाधर

मन सागर उमगायो
सखी री सावन घन छायो।

बंदनवार सज्यो सतरंगी
नाच उठी धरती बहुरंगी

रंग महल अंधियायो
सखी री सावन घन छायो।

बदरा कहियो बतियां दिल की
आस नहीं जीवन में पल की

बिरह घाव घहरायो
सखी री सावन घन छायो।

वसन्त

मीठी-सी बयारी चली, रस में पगारि चली,
रूप-सी सुनारि चलि कोई गुणवन्त है।
अंग अंग अनुराग, फूटी कै भयो पराग,
प्रेम-पुष्प-अंगराग छायो हि अनन्त है।
मुख पै चमक छई, नैन में झलक नई,
लालिमा ललक गई मनहु लजन्त है।
प्रेम न समात, अंग अंग मुसकात मनो,
धरती को कन्त बन आयो रे वसन्त है॥

चम्पक, चमेली प्यारी, सखियां सहेली सारी,
सजी अलबेली न्यारी संग ही चलन्त हैं।
गेंदन सों गुदे अंग, गाल पै गुलाब-रंग,
नयन बस्यो अनंग प्रेम सों पगन्त है।
उमग्यो उमंग-गंग, पुलकित अंग अंग,
षट्पद साज-संग बाज्यो रसवन्त है।
आम्रन की कुंज, प्रेम-पुंज पागि पिक बोलै,
धरती को कंत बन आयो रे वसन्त है॥

गीत

साजन दूर बसे, मेरी अंगना
साजन दूर बसे ॥

नभ पै छाई सावन छतरी
नाहिं दहै अब कठिन दुपहरी
नव-दुलहिन-सी धरती संवरी
मन-घट प्रेम रिसे ॥

आशा दीप जले दोऊ नैना
जोहें बाट जगे दिन रैना
अनबोले बोलें हिय बैना
प्रेम दुआर फंसे ॥

अधरों पर नाचै मृदु हासा
पढ़ि कै तरुणाई की भासा
लसित कपोल अरुणिमा वासा
लाज निगोड़ी डसे ॥

साजन ढिग जा कहहु सन्देसा
जल बिनु तड़पत मीन हमेसा
प्राण-पखेरु उड़न अन्देसा
तुझ बिन सुधि है किसे ?

कुण्डलियां (गो-रक्षा)

हिन्दु-देश में हिन्दु का होता शोषण हाय !
हिन्दु-रक्त से ही सदा शासक पोषण पाय,
शासक पोषण पाय, देख लो मन में गहरी खोट
कानूनों की ग्रोट में करता गहरी चोट
पड़े चुनाव पिटार में भांति भांति के फंद
बैल ग्रगाड़ी जोत कर, बोल रहा जयहिन्द ।

नेता-गण मुख से कहें, है "ग्राराम हराम"
उनके चेले तो कहें, "राम" बसे ग्राराम
राम बसे ग्राराम, लूट लो लूट मची है
किया नहीं ग्राराम, जिन्दगी ग्रन्धमती है
धन-यौवन की लूट, लूट ले प्यारे बेटा
ग्रभी समय है चेत, नहीं तो क्या तू नेता ।

गो-रक्षा के प्रश्न को, बना चुनाव स्टण्ट,
जगह जगह चिल्ला रहे, कांग्रेस एजण्ट,
कांग्रेस एजन्ट, देश में भारी सूखा,
'गोधन' की तज वात, यहां पै हर जन भूखा,
छोड़ छाड़ ये स्टण्ट, ग्ररे कुछ लाग्रो भिक्षा,
ग्रमन चैन से बैठ, कभी करना गो-रक्षा ।

'गो-हत्या ग्रभिशाप से देश हुग्रा कंगाल,
दूध, दही, मक्खन बिना, बने सभी कंकाल,
बने सभी कंकाल, नाचती मरघट माया,
भूख-नंग की विहंस रही है काली छाया
पापों का ग्रभिशाप, इसे मत मानो मिथ्या,
होगा सर्व विनाश मिटी नहिं यदि गो-हत्या ।

गो-रक्षा के प्रश्न से, शासक दल हैरान,
सोचे दल-गत भाव से, सदा मान अपमान,
सदा मान अपमान, देश का सबसे ऊपर,
कर मिथ्या अभिमान, गिरा हर मानव भू पर,
आज हो रही शासक-दल की अग्नि-परीक्षा,
गो-हत्या संपुष्ट बने, या कि गो-रक्षा।

सन्त-साधुओं का कभी, व्यर्थ न होगा त्याग,
जन-जीवन में जल उठी, गो-रक्षा हित आग,
गो-रक्षा हित आग, दिनों-दिन फैल चली है,
हिन्दु जाति के भेद भाव की मैल धुली है,
फिर से धर्म-अधर्म की भारी हुई भिड़न्त,
'यतोधर्मः" के वचन से, होंगे विजयी सन्त।

प्रशस्ति-गानम् (श्रीपाद् दामोदर सातवलेकराय)

श्रीसम्पन्न, ज्ञान-गुण-आकर, नागर, न्याय, नयज्ञ ।
पावन वैदिक-पंथ-पथिक तुम, वेद-शास्त्र-तत्वज्ञ ।।
दया-दान-दाक्षिण्य दक्ष हो, वरद-विभूति-वरिष्ठ ।
दान्त, शान्त, निर्भ्रान्ति, नीतिविद्, महा-महिम-मंहिष्ठ ।।
मोह-माधुरी-मुक्त-मधुप-मन, निगमागम-रस-लीन ।
दम्भ-दर्प, निर्लिप्त प्रचेतस्, धीमत्, धर्म-धुरीण ।।
रमण-वेद-वारिधि कर पाए, ज्ञान-रत्न-मणि-माणिक ।
साधक स्तुत्य साधना तेरी, अतिशय प्रामाणिक ।।
तपोनिष्ठ, राजर्षि, योगविद्, सर्व-शास्त्र-मर्मज्ञ ।
वरद-पुत्र, वर विबुध, विनायक, कवि-कोविद-कर्मज्ञ ।।
लेवैदिक-सन्देश दिव्य-द्युति, द्योतित किए दिगन्त ।
कल्प-कल्प तक वैदिक संस्कृति, जन-मन करे ज्वलन्त ।।
राष्ट्र-भक्त, वर-वेद-पारखी, परमोदात्त, विनीत ।
यत्र-तत्र हे आर्य पुरोधा ! गूंजे गौरव-गीत ।।
नमोवै वेद-व्याख्यात्रे, ब्रह्म-विद्या-निरूपिणे ।
नमः ते योगयुक्ताय, विबुधाय तपस्विने ।।